दयाल संदेश
Dayal Sandesh

The Message of
Maharishi Shiv Brat Lal Verman

Book One

परिचय

These are select excerpts from the original works of Data Dayal Maharishi Shiv Brat Lal Verman. These excerpts are gathered from public domain sources that are out-of-print or not widely available.

The purpose of this first book is to give an earnest spiritual seeker a glimpse of the philosophy and foundational principles of Sant Mat (the path of saints) which are beautifully, gracefully and lovingly explained by Maharishi Shiv Brat Lal Verman.

In the future, an effort will also be made to translate some of the primary works of the Maharishi into the English language in order to preserve his unique exposition of Sant Mat. Excerpts from the primary Urdu sources were transcribed into the Hindi script for this book.

May all be well, happy and peaceful!

जो महा दुखी हैं, भूले भरमे हैं, जो अपने उद्धार के ख्वाहिश मंद हैं, वह ही अधिकारी हैं. - महर्षि शिव

Those who are very unhappy, lost, full of doubts, and also wish to be rescued deserve these teachings.

- Maharishi Shiv Brat Lal Verman



दाता दयाल महर्षि शिव ब्रत लाल वर्मन

विषय - सूची

मंगलम अशब्द अरूप, शब्द स्वरुप स्वामी

मंगलम अलख अनाम, अगम नाम नामी

मंगलम दीन बंधु, दीना नाथ दाता

मंगलम अभेद भेद, आनंद धन त्राता

महिमा अनंत आदि, अंत कौन गावे

भेद तेरा कौन जाने, कौन कह सुनाये

संत भेस प्रगट जगत, जीव को चिताया

काल कर्म फंद काट, धुर ले पहुँचाया

प्रथम तत्व निज स्वरुप, पड़ कमल नमामी

गाऊं, ध्याऊँ, रात दिवस, भजूं राधास्वामी

संत मत

संत कहते हैं पवित्रता और निर्मलता को. संत मत इस दृष्टि से पवित्रता का मार्ग है. यही उसकी व्याख्या है. इससे अधिक उसकी व्याख्या करनी व्यर्थ है.

संत मत दया, प्रेम, और भक्ति का मार्ग है. संतों का ह्रदय दर्पण की तरह स्वच्छ और प्रदीप्त होता है जिसमे नाम को भी मैल नहीं होती, न दर्पण में बाल होता है.

काई लगा दर्पण अज्ञानी के ह्रदय के सामान है. वह धुंदला है, अँधेरा है. उसमे अभी तक अक्स नहीं पड़ सकता, किन्तु उसके ह्रदय में निर्मलता की इच्छा है तो वह और कुछ न करे, साधुओं की सांगत में उठे बैठे. सत्संग से वह धीरे धीरे जानकर हो जायेगा. जब यह जानकर होकर गुरु के चरणों की धूल ले लेकर अपनी भक्ति और श्रद्धा की जल से मलना और धोना शुरू करेगा, वह सुगमता से निर्मल हो जायेगा. ज्यों-ज्यों उसमे पवित्रता और सूक्षम्ता आती जाएगी, उसका विश्वास अपने आप पक्का होता जायेगा और जब वह इस प्रकार करते रहने से शुद्ध पवित्र हो जायेगा, उसमे असलियत का प्रकाश चमक उठेगा और उस प्रकाश में जहाँ उसने अपने रूप का खेल देखा, वह कृत्य-कृत्य हो गया. इस प्रकार ह्रदय के दर्पण में ज्ञान के प्रकाश की चमक दिखाकर असलियत का ज्ञान देना संत मत का काम है.

मनुष्य का ह्रदय सारे गुणों का भंडार है. उसके अंदर अनंत शक्तियां भरी पड़ी हैं. अनजाने की हालत में उसे ज्ञात नहीं होता. वहां के झोंके से झकोले कहते हुए पानी में किसी सतह के किनारे के वृक्षों की परछाई

दिखाई नहीं पड़ती. इसी प्रकार चंचल और व्याकुल ह्रदय में भी निज स्वरुप ज़ात का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता. सत्संग और गुरु भक्ति इसी चंचलता और परेशानी के रोग का सच्चा इलाज है. जब इलाज हो जाता है फिर स्वास्थ्य के प्राप्त होने में कोई संदेह नहीं रहता.

अज्ञान को हम बुरा नहीं कहते. यह अध्यात्म मार्ग की अंतिम श्रेणी है. ज्ञान का अधिकार केवल अज्ञानी ही को है. उसे अपने अज्ञान की दशा की कुछ खबर पड़ गयी है और वह उसके दूर करने और करने के इच्छुक है. ज्ञानी को ज्ञान का क्या अधिकार होगा! वह तो स्वयं ज्ञानी है. रोटी भूखे के लिए, पानी प्यासे के लिए है. जिसको भूख प्यास नहीं है उसे कोई क्यों दाना पानी देगा और उसे देने का क्या लाभ होगा.

अज्ञानी का ह्रदय केवल काई लगा दर्पण है. काई के दूर कर देने से उसमे स्वछता आ जाएगी और ज्ञान का प्रकाश स्वयं चमक उठेगा. इसमें अधिक समय न लगेगा. केवल थोड़ी सी कमी रह गयी है. वह उपरोक्त साधन करने सी धीरे धीरे पूरी हो जाएगी.

विचार और भावों की शुद्धि

राधास्वामी मत कहता है के विचार, भ्रम, और विश्वास, को स्पष्ट रूप से जानना संत मत में प्रवेश करने की पहली शर्त है. वास्तविक रूप में इस प्रसंग को पूरा किये बिना दूसरी मंज़िलों को पार करना महा कठिन है.

झूठे विचारों को छोड़ो. सच्चे विचारों में मन लगाओ.

यदि तुममे नास्तिकता है अथवा तुममे सार तत्व की जाहिरी समझ नहीं है तो फिर कभी इस और रूझान न करो. इससे लाभ ही क्या है? पहले सिद्धांत बद्धः हो जाओ. सिद्धांत को समझो.

विचार की व्याख्या पहली शर्त है. यह विचार क्या है? हम थोड़ी व्याख्या उसकी यहाँ किये देते हैं:

१. दिल दुखाने (हिंसा) से बचो. दिल दही (परहित कामना) या अहिंसा ही को अपने शिष्टाचार की विशेषता बनाओ.

२. मन, वचन, कर्म से अपवित्र न रहो. मन, वचन, कर्म से पवित्र बनो

३. किसी के धन दौलत पर कुदृष्टि न डालो. सचाई और ईमानदारी की कमाई करो.

४. असत और नाहक की और से ध्यान हटाओ. सत और हक़ को ग्रहण करो.

५. दुनिया की आसक्ति को कम करो. अपने आदेश की प्रेम को ह्रदय में स्थान दो.

केवल पांच बातें हैं. पांच बातों से अधिक छटी बात कोई भी नहीं है. इन पांचो में सब कुछ आ जाता है बल्कि बात तो यों है की इनमे से केवल पहली बात को कोई व्यक्ति अच्छी तरह मानकर उस पर चलने लग जाये तो शेष चारों बातें उसमे बिना किसी परिश्रम की स्वयं आ जाएंगी और इसी एक में सब कुछ है. मनुष्य जो चाहे वह करे लेकिन किसी का दिल न दुखाये और वह जीवन में देवता बन जायेगा.

शांति हासिल करने का उसूल

दत्तात्रेय ने कहा- ऐ साधू। तुम साधू हो। जो साधना करे वह साधू है। महज़ फक़ीराना सूरत बना लेने से कोई शख़्स साधू नहीं होता। साधना लाज़मी है। बिना साधन के साधू नहीं और बिना साधन के अनुभव नहीं। अनुभव के बिना ज्ञान नहीं होता। मैं तुमको निहायत इख़्तेसार के साथ संतों के उसूल तल्क़ीन करता हूँ। उनकी पाबंदियों से तुम रोज़ बरोज़ अपने अंदर तब्दीलियाँ देखोगे। और ज़िंदगी ख़तरात से मेहफ़ूज़ रहेगी।

अख़लाक़ी उसूल

1 आँख – कान – और लब को अपने बंद कर
राज़े हक़ की तब मिलेगी कुछ ख़बर
औरों के ऐबों को जब देखेगा तू
ऐब बीनी की पड़ेगी तेरी ख़ू
ऐबों का गहरा असर दिल पर जो हो
आदमी आपे से तब जाता है खो

2 जब सुनेगा दूसरों के ऐब को
मर मिटेगा आप ख़ुद गुमराह हो
देखने से ऐब के सुनना बुरा
सुनने वाला ऐब का है बद बला
उसका दिल मसमूम व ज़हर आलूद है
ऐब का सुनना बहुत मकरूह है

3 औरों के ऐबों का मत दे इश्तिहार
अपने ही ऐबों का हर दम हो होशियार
जिसकी बदगोई की आदत पड़ गई
ज़िंदगी उसकी समझ ले सड़ गई
जिस्म है बर्तन सड़ाँध को न भर
और ज़बाँ इख़राज की टोटी न कर
बद ज़बानी है तअफन गंदगी
बद ज़बानी बाइसे शर्मिंदगी

मज़हबी हिदायत

(1) क़ौल फेअल और नेक हों तेरे ख़याल
बेहुदा आदत से अपने को संभाल
पर्दा पोशी शाने रहमानी है गर
पर्दा फाशी ख़ूए शैतानी मगर

(2) हो दिलाज़ारी से हर दम ऐहतराज़
तब खुलेगा हक़ का कुछ कुछ तुझपे राज़
दिल दुखाता है तू हक़ से दूर है
दीनदारी यक क़लम काफ़ूर है

(3) काम कर दिन रात बेकारी न हो
नेक किरदारी हो बदकारी न हो
शहद की मक्खी की सूरत ऐ अज़ीज़
नफे की अपने हमेशा कर तमीज़

फूल से ले बेगमाँ अपनी ग़िज़ा
बर्गे गुल पाँवों के धब्बों से बचा

(4) दिल है मोअबिद दिल में रहता है ख़ुदा
दिल किसी का बात कहकर मत दुखा

रूहानी बंदिश

(1) तीन बंद लगाए कर सुमिर सुमिर गुरू नाम
साधू सुमरिन मात्र से कर ले पूरा काम
(2) तीन बंद लगाए कर- हो सतगूर का ध्यान
ऐसे ध्यान से साद हुआ- मिलेगा सच्चा ज्ञान
(3) तीन बंद लगाए कर नाम निरंजन ले
अंतिर के पट तब खुलें जब बाहर के दे
(4) तीन बंद लगाए कर मुँह से कुछ न बोल
बाहर के पट दिए कर- अंतर के पट खोल
(5) तीन बंद लगाए करसुन अलहना धन तान
सहज योग साधन सुगम पर गए पद निरवाण

साथ ही सिद्धी शक्ति, ख़र्क़े आदात, मोजेज़ात, करामात सबके सब मायावी और माया के बंधन हैं। ये मंज़िले मक़सूत तक पहुँचाने के नाक़ाबिल और गुमराह करने वाले हैं।

माया सिद्धी शक्ति में झगड़े करे अनेक
इस झगड़े में जो पड़ा सूछे नहीं पद एक
लेना हो सो चल्द ले कही सुनी मत मान
कही सुनी जुग जुग चले आवा गवन बंधान

एक और अनेक

एक में अनेक है और अनेक में एक है. कल में माया है, माया में काल है. पुरुष में प्रकृति है, प्रकृति में पुरुष है. ज़ात में सिफ़त है, सिफ़त में ज़ात है. इन्हीं द्वंदों के समूह का नाम दुनिया है. दुनिया और कुछ नहीं है. केवल दो पाने का स्थान है और जहाँ दो रहेंगे वहां हर समय खट पट होती रहेगी और अंधकार उनसे खेल किया करता रहेगा यह प्रकृति का नियम है.

राधास्वामी मत माया को मिथ्या नहीं बताता. जीवन के मंडल में वह वास्तु है. अपनी सत्ता रखती है, मगर हाँ उसकी सत्ता किसी और सत्ता के अधीन है. यदि तुम हो ही एक अनेक के मंडल में पड़े रहोगे तो इससे तुम्हारे हाथ क्या आएगा? "दुविधा में दोनों गए माया मिली न राम"

ईश्वर एक ही है. बहुत अच्छा साहिब. फिर क्या हुआ? उससे मन लगाओ. मगर मन कैसे लगे दुनिया तो मरी नहीं, चले ईश्वर की ओर, और दुनिया ने आकर पल्ला पकड़ा. वह बेचारा न इधर का हुआ न उधर का. जीवन दुखदाई बन गया. संत मत कहता है - किस झगडे में तुम पड़ गए.

एक अनेक के बखेड़े में जान खपाने लगे. कौन कहता है दुनिया को छोड़ो? दुनिया में रहकर परमार्थ की कमाई भी सहज मार्ग से क्यों नहीं करते? सुरत शब्द के अभ्यास में लगो. मन का कोठा तो बदल दो. स्वयं ही असलियत की समझ आ जाएगी.

सच्ची बात तो यह है के असलियत न एक है, न दो है. वह जो है वह है. दुनिया के बाग में आकर यदि फल खाना है तो फल खाओ, और यदि पेड़ पत्ते गिनना है तो गिना करो. इस में मर खपोगे और करते-करते कुछ न बनेगा.

एक कहूं तो है नहीं, दूजा कहूं तो गार
जैसा है, तैसा रहे, कहे कबीर विचार

परम सिद्धांत

जो न एक है और न अनेक है, जो एक और अनेक दोनों है और जिसके विषय में मनुष्य के स्पष्ट शब्दों में किसी बात का अंतिम निर्णय नहीं दिया जा सकता वही आदर्श इष्ट और असलियत है. जिसे कहने वाला कह नहीं सकता, सुनने वाला सुन नहीं सकता, और पहचानने वाला पहचान नहीं सकता. वह आश्चर्य का विषय है.

हैरत ! हैरत !! हैरत !!! होइ
हैरत !!!! रूप धरा पुनि सोइ

उसी का चारों और कथन है और उसी की और से निश्चिंतता और मौनता है. उसी की सबको इच्छा है और उसी से सबको बेपरवाही है.

अंत में वह क्या है? जिसने जाना उसका जानना भी न जानने के बराबर है. जिसने नहीं जाना उसका न जानना भी जानना है. आस्तिक और नास्तिक उस जगह एक जैसी हैसियत रखते हैं.

संत मत के तीन सतम्भ अर्थात सतगुरु, सत्संग, सतनाम हैं. लेकिन जिस समय आंतरिक दृश्यों और आतंरिक अनुभव का विषय आता है वहां उसे सवतंत्रता है. इन दो पंक्तियों को ध्यानपूर्वक समझ लो. तब तुम समझ सकोगे संत मत क्या है. यदि इसको नहीं समझा तो तुम भी अन्य समुदाय वालों की तरह पक्षपाती, संकीर्ण ह्रदय, और कट्टर हो जाओगे और संत मत तुम्हारे गले की जंजीर बनकर बंधन में फसा लेगा और तमाम परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा.

यह बीच का मार्ग है. बंधन में निर्बंध, निर्बन्धता में बंधन. यह इसका गुण है. इसकी विशेषता को जाने हुए असली ध्येय हाथ नहीं आता. गुरु नानक की वाणी है:

जब लग देखो न अपने नैना
तब लग मानो न गुरु के बैना

मन और माया का अंग

तत्वा ने पूछा – हज़ूर मन का कुछ रूप बता दीजिये, जिससे यह दुष्ट समझ में आ जाये. उस समय उसके शेष अंगो का समझना सुगम हो जायेगा.

कबीर साहिब ने उत्तर दिया – बात बहुत कठिन है और बात बहुत सरल है. जिसने सरल समझ लिया उसके लिए सुगम है.

लोक परलोक दोनों मनुष्यों के विचार और भावनाओं पर निर्भर है.

जिस विचार और निश्चय को जिसने दृढ़ कर लिया है उसी प्रकार की सामग्रियां उसकी दृष्टि में आती रहेंगी. यह प्राकृतिक सिद्धांत है इसलिए टीम पहले अपने मन में इस निश्चय को दृढ़ करो के मन का समझना सुगम है. तब सुगमता से मेरे वचनो को हृदयांकित कर सकोगे. और यदि इसे कठिन समझ लोगे तो फिर यह बड़ा गूढ़ विषय बन जायेगा और मेरा समझाना-बुझाना कुछ समय के लिए धरा का धरा रह जायेगा.

अपने उलझे उलझियां, देखे सब संसार.
अपने सुलझे सुलझेयां, यह गुरु ज्ञान विचार

तत्वा ने कहा – हज़ूर, मैं समझने का प्रयत्न करूँगा. आप समझाइये, चित्त को डांवां डोल न होने दूंगा.

कबीर साहिब हँसे – बस इस बात की आवश्यकता है, इससे अधिक मैं कुछ और नहीं चाहता. विचार, ध्यान, एक दिली, यकसूई, और एकाग्रता ही

पात्र होने के लक्षण हैं. यदि शिष्य का ऐसा स्वाभाव हो गया तो फिर उसमे योग्यता और अधिकार का आना आवश्यक है. अब मेरी बातों की और ध्यान दो.

एक समुद्र है जो पानी सी भरा है. वायु के झोंके लगे, लहरें उठने लगीं. जवार भाटा का दृश्य उत्पन्न हुआ. लहरें भिन्न भिन्न हो गईं. कोई ऊपर चढ़ती है और कोई नीचे आती हैं. कहीं बुलबुले, कहीं झाग है, कहीं बूंदों की अधिकता है, कहीं फव्वारों के रूप में बूंदे समुद्र के बाहर भीतर उड़ती हैं. किसी स्थान पर झाग बन कर विचित्रता का तमाशा दिखाती हैं. समुद्र के इन अनेकों रूपों का नाम मन है. जहाँ जहाँ हवा के झोंकों ने जिस प्रकार उनके भीतर ग्रंथियां दे दी हैं, वहां वहां देश काल के प्रभाव और विचार का दृश्य हो रहा है. और एकत्ववाद ही में अनेकवाद का तमाशा है.

यों समझो माद्दा, प्रकृति एक समुन्दर है. वह तप कर अपने भीतर से इस प्रकार की अनेकों ग्रंथियाँ अलग अलग उत्पन्न करता है. एक ग्रंथि सूर्य है दूसरी ग्रंथि चन्द्रमा है. तीसरी ग्रंथि पृथ्वी है. तारामंडल ग्रंथियां हैं. और ग्रंथिओं के भीतर ग्रंथियां भरी पड़ी हैं. यह आकाश और पाताल के गोलारद्ध वसु (रहने का स्थान कहलाती हैं). इनके भीतर देवता, मनुष्य, थलचर, नभचर, खनिज, वनस्पति, पशु, कीड़े, मकोड़े बास्ते हैं. यह भी सभ ग्रंथियां हैं. यहाँ प्रत्येक स्थान पर ग्रंथियों के भीतर ग्रंथियां पड़ी हुई हैं -

मन समुद्र लख न पड़े, उठे लहर अपार
दिल दरिया समरथ बिना, कौन लगावे पार

जो मैंने प्राकृतिक जगत और समुद्र की उपमा दी है वह केवल तुम्हारे समझाने-बुझाने के विचार से है.

ग्रंथियों के मंडल में नियम हैं - जो लेता है, वह देता है. जो जाता है, वह आता है. जो चक्कर काटता है, वह रुकता भी है. साँस आती है और जाती भी है. खाना खाया जाता है और मल मूत्र के रूप में निकाला भी जाता है. एक जीव भी यहाँ ऐसा नहीं है जो इस नियम के पालन करने से मुक्त हो. यह ग्रंथियां अथवा इन ग्रंथियों का नाम मन है.

यह जगत मनोमय है और मन ही से बना है. ग्रंथियां चक्कर खा रहीं हैं. आवागमन हो रहा है. यह सब मन का तमाशा है. तुम मन दो, मन ही तुम्हारा जीवन है.

मन ही से बंधन और मुक्ति है. मन ही में भक्ति और ज्ञान है. अथवा तुम इसको यों कहो - जिसकी रुचि और स्वभाव ने जिस विशेष विचार, ध्यान, और जिस विशेष निश्चय के प्रभाव को हृदयग्राही, रूचिकर और मनोरंजक बना लिया है, वह उसी प्रकार के व्यवहार का अभिलाषी है. यही कारण है कि इस मनोमय जगत में अनेकों भिन्न-भिन्न रूप देख पड़ते हैं और भिन्नता का होना अवश्यकीये है.

मंडल जैसा होगा उसमें उसी के अनुसार रूप रंग का विकास होगा. यह द्वन्द जगत है. यहाँ प्रत्येक स्थान पर दोपना है. यह विपरीतता का समूह है. एक का रंग रूप दूसरे से नहीं मिलता. एक वृक्ष के दो पत्ते, एक शाखा की दो डालियाँ, एक पेड़ के दो फल और एक फल के दो बीज कभी परस्पर सम्पूर्ण

अंगो से एक जैसे नहीं होंगे. यहाँ तक यदि किसी के दो पुत्र हुए, उनमे भी भिन्न रूप, भिन्न स्वभाव रहन सहन के कारण तो अवश्य भिन्नता होगी. जो पुत्रों को जनम दिया था वह मन ही था. जो पुत्र उत्पन्न हुए थे वह भी मन ही थे. प्रत्येक जाति अपने जाति की अधिकता और वृद्धि की इच्छुक रहती है. यह प्राकृतिक सिद्धांत है.

इसलिए यह जो कुछ हो रहा है, होगा और हुआ था, वह सब मन का खेल है. मन ही का नाम अधिकता है. तुम्हारे मन में कोई एक बात नहीं रहती, कभी कुछ है, कभी कुछ है. भिन्नता, विशेषता, शीघ्रता, अद्वितीयता, और निरालापन इस मन की विशेषतायें हैं.

जीवों का कष्ट देख कर मैं उनको चिताने के लिए आता हूँ और निर्भयता से उच्च स्वर से सुनाता हूँ -

मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक.
जो मन पर असवार हैं, सो साधू कोई एक.

तुम अपने मन से पहले मन के भीतर बैठ कर उसके रूप को समझो. परन्तु यह उस समय संभव होगा जब समुन्द्र के निश्चय को हृदय के सन्मुख आदर्श रूप रख लोगे. पहले अपने मन के भीतर सारी शक्तियों को लेकर आ जाओ, फिर समुद्र को देखो.

जब तक मन भिन्नता प्रिय, अधिकता प्रिय, द्वंदता प्रिय, और विपरीतता प्रिय है तब तक वह अद्वैतवाद की और न झुकेगा.

अनेकवाद में दुःख है. इस कारण सब दुखी हैं. अद्वैतवाद में सुख है. अद्वैतवाद की ओर जाने से सुख मिलेगा. अनेकवाद विछोह, वियोग, दूरी और दुचितायी है. अद्वैतवाद योग, अंग-संग, एकत्रता, समीपता, और मिलाप है. हज़ारों वर्षों से लोग इस गुत्थी को सुलझाते रहे परन्तु वह अब तक नहीं सुलझी. मैं इनके सुलझाने के लिए ही प्रगट हुआ हूँ...मैं केवल इसी मन के भेद खोलने के लिए प्रगट हुआ हूँ.

जो वस्तु जिससे बनी होती है उसमें उसी के गुण सदैव विधमान रहता है. शक्कर गन्ने से बनती है अतएव मीठी होती है. कड़वा अचार लाल मिर्च से तैयार किया जाता है इसलिए कड़वा होता है. माया में स्वाभाविक रीती से तीन अवस्थाएं - सुख, दुःख, और आलस्य हैं. इसलिए चूंकि मन इसी माया के मसाले से बना है उसमें उसकी विशेषताओं का आना अवश्यकीये है. माया चंचल है, माया ही निश्चल है, और माया ही में चंचलता निश्चलता दोनों की मिलौनी है.

तुम व्यर्थ कह रहे हो कि मन सदैव चंचल रहता है. तुमने अभी तक भली भांति मन का अंग नहीं समझा वरन कभी ऐसा न कहते. मन में तीनों अवस्थाएं हैं. कभी वह चंचल है, कभी निश्चल है, कभी चंचल और निश्चल दोनों ही है.

माया से मन कैसे क्षोभित होता है? देश, काल, और वस्तु के सम्बन्ध से, पहले कर्मों के संस्कारों से, आहार से, और घटनाओं ओर उनके प्रभाव से मन चलायमान होता है. जिस प्रकार वायु के झोंके पानी के धरातल को

चलायमान कर देते हैं वैसे ही इन सब सामग्रियों के मेल से मन चलायमान होता है और चलायमान होते ही वह चंचल हो जाता है. यह सब सामग्रियां और सामान माया हैं और माया के रूप हैं.

यह जगत द्वन्द अर्थात दो पने का स्थान है. इसकी कोई अवस्था एक सामान नहीं रह सकती. सदैव इसमें परिवर्तन होता रहा है. प्रत्येक परिवर्तन के अन्तर्ग्रत यही तीनों अवस्थाएं काम करती रहती हैं. यदि मन का विशेषण चंचल ही होना होता तो फिर योगी और ऋषि मुनि इसको निस्चल कैसे कर सकते? क्योंकि इसमें निस्चल होने का विशेषण है तभी तो साधन किया जाता है.

किसी का प्राकृतिक स्वभाव कोई कभी नहीं बदल सकता और जब तक वह उस विशेष अवस्था में है वही बना रहेगा. यह तुम भली भाँती समझ सकते हो. प्रत्येक जीवधारी संसार में तीन अवस्थाओं में भ्रमण करता है. एक अवस्था जाग्रत है - उसमें मन जगता है और चंचल रहता है. दूसरी अवस्था स्वपन की है, इसमें मन चंचल और निस्चल दोनों ही रहकर स्वपन के जगत की रचना करता है. सुषुप्ति तीसरी अवस्था है जिसमें मन बिलकुल ही निश्चल हो जाता है और फिर उससे कोई काम नहीं बनता.

जिस प्रकार यह मन माया से बना है वैसे ही यह शरीर भी तत्वों के मेल से बने हैं जो माया ही है. जो विशेषण उनमें हैं वही मन में भी हैं. इसलिए रूप की दृष्टि से माया और मन एक सामान हैं. हाँ मन मन है और माया माया है. अपने अपने स्थान में उनकी अवस्थाएं पृथक हैं. यह सच है के बिना माया के

संयोग के मन कुछ नहीं करता, परन्तु उसका अर्थ यह नहीं है के मन में करने धरने का संस्कार नहीं है.

माया और मन के रूप को तुम पानी और मछली के समान समझो. मछली पानी ही से उत्पन्न होती है, पानी ही से उसकी असली जड़ है और वह पानी रूप ही है और पानी ही में उसका खेल होता है, परन्तु पानी पानी है और मछली मछली है, उनमे भेद होता है. पानी की कमी मछली को बेचैन और अधीर कर देती है. वह तड़पने लगती है. पानी की माध्यमिक अवस्था में या यह कि जहाँ पानी में धारा की शक्ति है वहां मछली तैरती, भोग विलास करती और उछलती कूदती रहती है. परन्तु जहाँ पानी बहुत गहरा है और जब मछली उसमें डुबकी मार जाती है तो मछली शांत हो जाती है. मछली की यह तीनों अवस्थाएं मन के सदृश्य हैं और पानी की न्यूनता, अधिकता, और माध्यमिक अवस्था मन के तीनों शरीर के समान हैं. जैसा पानी और मछली में अंतर है वैसा ही माया और मन में अंतर है.

असल में दोनों एक हैं. परन्तु व्यव्हार और प्रपंच की दृष्टि से भिन्न हैं. पानी की ग्रंथियों को मछली समझो. सर्वव्यापक पानी ही ने ग्रंथि बनकर मछली का रूप धारण कर लिया है. इसी प्रकार माया ने ग्रंथि बनकर मन का रूप धारण कर लिया है. और जिस प्रकार मछली पानी का व्यव्हार करती रहती है वैसे ही मन माया के व्यव्हार में उछलता कूदता और ठहरता जमता रहता है. हाँ, यह ग्रंथि वाला है और माया कुछ और है. मुझे आशा करनी चाहिए कि अब तुम मन और माया के रूप को उदहारण द्वारा कुछ समझ गए होंगे.

माया त्रिगुणात्मक है. इसमें तीन गुण है - सत्, रज, और तम.

- सतोगुण में प्रकाश, आनंद, और शांति है.
- रजोगुण में चंचलता, दुःख और अशांति है.
- तमोगुण में जड़ता, आलस्यपन, और निरचलता है

जब माया के यह तीन गुण मिले जुले हुए सामान्य अवस्था अर्थात साधारण दशा में रहते हैं, तब उसका नाम प्रकृति होता है. यह माया का कारण रूप है. और इसके इसी रूप में जगत की जड़ होती है. जब माया अपने कारण रूप में रहती है उसमें जड़ वृति रहती है. तब जगत का अभाव प्रतीत होता है. और जब माया में सूक्ष्म चल अवस्था उत्पन्न होती है और उसमें सत वृत्ति आती है और जब सत् वृत्ति स्थूल और सूक्ष्म में मिली हुई कुछ घनी हो जाती है तब इसमें रजोगुण वृत्ति आती है और स्थूल जगत का व्यव्हार होने लगता है. सृष्टि, उत्पत्ति, और प्रलय यह तीनों माया की सीमा होते हैं. इन्हीं का नाम संसार और जगत है और चूंकि माया के यह तीन व्यव्हार स्वाभाविक रीति अर्थात प्राकृतिक रूप में विध्यमान हैं इसलिए सरे जीव जंतुओं में चाहे वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश हों अथवा वह मनुष्य, पशु, और वृक्ष इत्यादि हों इन सब में वही दृश्य रहता है.

तुम जन्मते मरते संसार का व्यव्हार करते हो. तुम सोते जागते और गहरी नींद में बेसुध हो जाते हो. तुम आते जाते और ठहरते हो. तुम साँस लेते और साँस को रोकते और साँस को बाहर फेंकते रहते हो. इसलिए तुममे भी वही तीन व्यव्हार प्रत्येक दशा में विद्यमान हैं. और क्षण क्षण यह ही तो प्रगट होते रहते हैं. जो क्रिया त्रिगुणात्मक तुम प्रत्येक समय करते रहते हो वही सब

प्राणी करते रहते हैं. इस से तिब किसी एक को भी पृथक नहीं कर सकते. मन में यह विचार करके देख लो.

संसार में जो वस्तु बनी है वह बिगड़ेगी और जो बिगड़ रही है वह अपने भंडार की और वापिस जाएगी. मुझे तो एक कण ऐसा देख नहीं पड़ता जो त्रिगुणात्मक न हो और त्रिगुणों के विशेषण से वंचित हो.

इस मन की वृत्तियों को कोई विस्तार से वर्णन नहीं कर सकता. यह बड़ा कठिन काम है और उसके लिए अधिक समय की भी आवश्यकता है. इस मन की निकृष्ट वृतियाँ अर्थात इसमें पांच दोष हैं - क्रोध, काम, लोभ, मोह, अहंकार. और उसकी उत्तम वृतियाँ भी पांच हैं - दया, उदारता, निहसम्बन्ध्ता, पवित्रता, और दीनता. अधिकारी को पहले निकृष्ट वृत्तियों का त्याग करना पड़ता है और उत्तम वृत्तियों को ग्रहण करना पड़ता है फिर इनका भी त्याग हो जाता है.

- निकृष्ट वृत्तियों के त्याग का नाम **यम** अर्थात बाहर निकालना है.
- उत्तम वृत्तियों के ग्रहण करने का नाम **नियम** अर्थात ग्रहण करना है.

यह पहली मंज़िल है, परन्तु कोई चाहे कि यों ही इनका त्याग कर दिया जाये तो यह कठिन है. ग्रहण और त्याग दोनों ही कठिन हैं. सब से सुगम युक्ति यह है के मनुष्य कुछ दिनों सत्संग करे जिससे उसके मन में अच्छी संगत का प्रभाव उतपन्न हो. तब वह सरल हो जाएँगी और बड़ी सुगमता से काम बन जायेगा. और यदि कहीं भ्रम में पड़ कर कोई दूसरी युक्ति की गयी तो मैं यह नहीं कहता कि सफलता न होगी किन्तु इसमें बहुत समय नष्ट होने

की शंका है. सत्संग ही सबसे अधिक सुगम सरल और लाभदायक युक्ति है. इसी कारण मैने अपने हंसों को पुस्तकों और कठिन साधनों से बचाकर केवल सतसंग और अभ्यास की शिक्षा देना प्रारम्भ कर दी है.

मन का रूप निहारो साधु, मन का रूप निहारो
मन ही राजा मन ही परजा, मन का सकल पसारो
मन ही कुटिल मन ही निर्मल, मन है अति ही करारो
मन रथ गज है मन सब कुछ है, मन ही बनो असवारो

मन परलोक लोक यह मन है, मन ही जगत बिस्तारो
ज्ञान विराग भक्ति सब मन है, मन ही इष्ट करतारो
समझ बूझ अनुभव सब मन है, मन ही अचार विचारो

मन तिरिया मन मातु बंधु कुल, मन सुत गृह परिवारो
मन सुध बुध मन काम क्रोध, मन में भरो विकारो
मन को सोध चलो गगना पर, सुनो राधास्वामी पुकारो

--o--o--o--o--o--

माया छाया एक रूप हैं, पकड़े हाथ न आवे
रूप जान ले इनका भाई, फिर नहीं यह भरमावे

जो भागे माया के भय से, वह कायर अज्ञानी
माया मिथ्या कल्पित झूठी, नाटक खेल की खानी

नाटकशाला सब जातें हैं, देखन खेल तमाशा
किसी के चित्त उदासी आई, किसी को हर्ष हुलासा

साधु साक्षी रूप से देखें, अपना रूप न त्यागें
नहीं वह भिड़ें न लड़ भिड़ कल्पेन, नहीं माया से भागें

सूम बना माया की गठड़ी, अर्थ का लाड़ प्यारा
सखी माल दौलत को भोगे, रहे सदा छुटकारा

माया नहीं है दुःख का कारण, दुःख अज्ञान है भाई
समझले अपना रूप अनूपा, फिर यह हो सुखदाई

काम है माया धर्म है माया, अर्थ है माया रूपा
जो नहीं इनका रूप पिछाने, गिरे भरम के कूपा

कूप गिरे तो गोते खावे, कभी नीचे कभी ऊपर
चेत न आवे समझ न पावे, भार कष्ट का सिर पर

संत समागम जो कोई आवे, सार भेद कुछ बूझे
राधास्वामी गुरु की दया, निज स्वरुप की सूझे

सुरत-शब्द का अंग

वेदांत जिसको आत्मा और जीवात्मा कहता है और सूफी जिसे रूह कहते हैं, संत मत में उसके लिए खास शब्द 'सुरत' गड़ा गया है.

सुरत तवज्जह को कहते हैं. प्राकृतिक जगत में तवज्जह ही सबसे बढ़कर तत्त्व है. यही सबका इत्र है. जब तक तवज्जह का झुकाव अन्य वस्तुओं की ओर है तब तक सुख दुःख और बंधन है. जब तवज्जह का झुकाव निज स्वरुप (ज़ात) के अपनी ओर अथवा निज भण्डार की ओर होता है तब उसमें उच्चकोटि का आनंद, बेपरवाही, और निज रूपता आ जाती है. यह सब गुण उसमें पहले से ही विद्यमान हैं, परन्तु भ्रम, धोखा अथवा स्वयं स्वभावतः किसी अन्य और आकर्षित होने से वह आवरण में अटक कर कुछ की कुछ प्रतीत हो रही है.

संत मत में केवल इसी एक तत्व की छान बीन, अध्यन और उसके रुख को असलियत की ओर फेरने का यतन किया जाता है. इसी का नाम ज्ञान, इसी के काम को कर्म, और इसी की असलियत से सम्बन्ध जोड़ने को भक्ति कहतें हैं.

जो कुछ यहाँ है वह सुरत और तवज्जह ही से है और उसी का तमाम पसारा है. यह मन नहीं है. मन उसके काम का हथियार है. सुरत मन की चोटी पर रहती है. तवज्जह को जन साधारण की बोलचाल में एकाग्रता, एकदिली, एक चित्त, और यक रुखी कहते हैं. यह गलत नहीं है, मगर वह इससे कुछ भिन्न है और सबका तत्त्व है. यह सुरत हमारे शरीर में दोनों आँखों

के पीछे रहती है. इसको शक्ति और शैव, शिव नेत्र, तीसरा तिल, और रूद्र की तीसरी आंख कहते हैं. वह यहाँ रहकर अपनी मनोवृत्ति द्वारा कुल देह में फैली हुई है. इस दृष्टि से शरीर के अंदर सर्वव्यापक कहलाती है. एक स्थान पर अपने मंडल में स्थित भी है और सर्वव्यापक भी है. एक स्थानी होते हुए वह सर्व स्थानी भी है.

इस सुरत का भण्डार इसी तुम्हारे शरीर में है. वह पूर्ण भण्डार है. ये सुरत अंश है. जब तक सुरत कि दृष्टि अंशों पर है तब तक उसे आंशिक दुःख सुख प्रतीत होता रहता है. जब उसकी दृष्टि कुल या भण्डार की तरफ चली जाये तो फिर वह दुःख सुख से परे हो जाएगी.

इस भण्डार के तरफ तवज्जह केवल ख्याल की सहायता से दिलाई जाती है. यही विचार कराना सतगुरु का उपदेश कहलाता है. राधास्वामी मत का सत्संग केवल ख्याल दिलाने से सम्बन्ध रखता है. इस मत में न कठोरता है, न सख्ती, न ज़ोर है न जुल्म. जिसका जी चाहे सत्संग में आकर गुरु से सच्चे ख्याल ले और उनके अभ्यास में लग जाये. ख्याल का प्रतिदिन का अभ्यास उसके विश्वास को दिन प्रतिदिन दृढ़ करता चलेगा और जब वह अपनी आँखों से देख लेगा फिर संभव नहीं के कोई लोक और परलोक कि शक्ति उसे बहका सके यां पथभ्रष्ट कर सके. पथभ्रष्टता तो अनसुनी, अनसमझी, अनदेखी और अनजाने का परिणाम है. यहाँ मनुष्य के अनुसार उसकी हालत के दिखाने का प्रबंध है. न कहीं पढ़ाना है, न लिखना, न भरमाना, न भटकाना है. ख्याल सहानुभूति और प्रेम के साथ दिया जाता है.

काम करो, काम में लग जाओ और उसका परिणाम स्वयं देखोगे. अधिक कहने सुनने की आवश्यकता क्या है? विचार ही मनुष्य को दुर्बल बनाता है और विचार ही शक्तिशाली बनाता है. विचार ही से उसे ईश्वर पूजा आती है, विचार ही से निर्बलता आती है और नास्तिक हो जाता है. विचार ही से वह दुनिया का पुजारी बनता है. इस कारण से राधास्वामी मत में व्यर्थ और अनुपयोगी कर्म धर्म से निःसंबंध रहकर अपने सेवक, उपासक, साधक और अनुयायी को केवल ख्याल दिलाकर - निज स्वरुप, सार तत्त्व, और एकत्ववाद की ओर तवज्जह कराता है.

सार बचन राधास्वामी की भूमिका की ओर ध्यान दो - मालूम होवे के आदि शब्द कुल का कर्ता और स्वामी है. और आदि सुरत यानि उसके अव्वल ज़हूर का नाम राधा है. इन्हीं का नाम सुरत और शब्द है. जब इनकी धार नीचे आयी तब इसी आदि शब्द से ऑर शब्द, आदि सुरत से ऑर सुरत, और आदि शब्द से सुरत, और सुरत से शब्द बराबर प्रगट होते आये ऑर अपने अपने मुकाम पर कायम हुए.

शब्द चेतन का प्राकट्य है. इसी पर सृष्टि की उत्पत्ति निर्भर है. यही कर्ता धर्ता सब कुछ है. राधास्वामी मत में इस आदि शब्द को स्वामी कहा गया है. धार के रूप में शब्द का प्राकट्य होता है. आदि शब्द से जो धार निकली - उसी की उलटी यां गोल-धारा को राधा कहते हैं. जिस तरहं स्वामी आदि शब्द था उसी तरहं यह राधा आदि सुरत कहलाई. इनके मेल से यह जगत रचा गया और शब्द से सुरत और सुरत से शब्द का क्रम निकला. हम सुरत और शब्द से अपने अपने मंडल बनाकर उसमें स्थित होते चले गए और उनके बीच भिन्नता की सुरतें कायम होती गयी.

रचना जब होगी धार के रूप में होगी और धार जब निकलेगी घेरे के रूप में चक्कर खा खाकर उसी घेरे में ठहरेगी. गति सदा गोलाकार में प्रकट होती है. यह सिद्धांत है.

देह को देखो - राधास्वामी मत की असली पुस्तक केवल मनुष्य शरीर है और सत्संग में उसी के अध्यन की रुचि पैदा की जाती है. जब आदि धार उतरी तो वह घेरे बनाती हुई आयी. इन सब घेरों के अंदर सुरत और शब्द, और सुरत दोनों ही हैं. इन्हीं सुरत और शब्द के सिलसिले में मन, बुद्धि, अहंकार आदि सब ही लिपटे हुए पड़े हैं और उनके अन्तर्ग्रत हैं.

पूर्णता का संस्कारऔर गुरु की भक्ति

बिछोह में दुख है, मिलाप में सुख है
वियोग में अज्ञान है, योग में ज्ञान है
वियोग में भ्रम है, योग में निभ्रॉंति है
बिछोह में अशांति है, मिलाप में शांति है

दुःख कुल (पूर्ण) के अंशों में है, पूर्ण में नहीं है. इस कुल ऑर पूर्ण से मिलने के दो रूप हैं - एक तो अपने आपको अलग थलग रखकर मिलाप करना. यह अपूर्ण मिलाप है. और दूसरा यह कि अपने आपको इस तरह मिला देना कि नाम के लिए भी अंतर न रहे, यह पूर्ण मिलाप है.

गुरु और चेले का मिलाप भी पूर्ण और अप्पूर्ण का मिलाप है. गुरु आइडियल पूर्ण है. चेला अपूर्ण है. यदि गुरु के साथ मिलने में थोड़ा सा भी अंतर रह गया तो काल रूपी व्याधे के आक्रमण से मुक्ति न होगी.

व्यक्तित्व की स्थिति रखने में भी एक भलाई की सूरत है. जैसे समुद्र में मछली रहती है और उसी का रूप बानी हुई आनंद का भोग करती है. परन्तु यहाँ भी कुछ न कुछ अहंकार का मिलान रहेगा. इसलिए अच्छा तो ये है कि सर्वाधार की भक्ति इस प्रकार की जाए कि यह अंतर भी शेष न रहे. यही अमर जीवन का रूप है.

गुरु की संगत मिलाप (योग) की पहली सीढ़ी है. गुरु के वचन सुनते ही उनके संग का आनंद दूसरी सीडी है. आंतरिक अभ्यास करते हुए मछली और पानी के एक रूप होने कि क्रिया तीसरी सीडी है.

जब वह इस प्रकार मिल जाए कि नाम का भी अंतर न रहे और अंतर का ज्ञान पूरे रूप से मिट जाए तो यह चौथी अवस्था और चौथा पद है और वही आदर्श है.

भक्ति कैसी होनी चाहिए?

जल ज्यों प्यारी मछली, लोभी प्यासा दाम
माता प्यारी बालिका, भक्ति प्यारी राम
भक्ति प्राण सों होत्त है, मन दे कीजे भाव
परमार्थ परतीत में यह तन जाव तो जाव

भक्ति नष्ट होने वाली वास्तु नहीं है. कबीर साहिब का कहना है:

भक्ति बीज विनशे नहीं, आये पड़े जो झूल.
कंचन को विष्टा पड़े, घटे न ताको मूल

यह भक्ति सरल से सरल है, और कठिन से कठिन भी है. यह जीते जी मरने का तरीका है. जो जीते जी मरने का भेद जानते हैं उनके लिए यह बड़ा सरल है. यहाँ तक के इससे सरल कोई भी काम नहीं है. और जो जीते जी मरना नहीं चाहते, उनके लिए यह अत्यंत कठिन मार्ग है.

हर काम में जीते जी मर मिटना पड़ता है तब सफलता होती है. कोई कार्य हो, साधन हो जब तक दत्त चित्त होने और निमग्न होने का रहस्य नहीं मिल जाता, तब तक उसे असफलता रहती है.

अभिप्राय तो यह है कि देह की ओर से विस्मृति हो जाये ओर इस विस्मृति का नाम मरण है. भक्ति चाहती है कि पूर्णतया उसी के हो जाओ. उसके अतिरिक्त किसी ओर का ध्यान न रहे तब वह हाथ आएगी. इसके बिना कठिन है.

कबीर साहिब की वाणी है:

तन थिर, मन थिर, सुरत निरत थिर होय
कहे कबीर इस पलक को, कलप न पावे कोय

***

भक्ति दुहेली गुरु की, नहीं कायर का काम
शीश उतारे हाथ सों, ताहि मिले सतनाम
भक्ति दुहेली गुरु की, नहीं कायर का काम
निराधार निष्प्रयोजन, आठ पहर संग्राम
भक्ति दुहेली गुरु की, ज्यों खांडे की धार
डिगडिगाये सो गिर पड़े, निस्चल उतरे पार
जब लग भक्ति सकाम है, तब लग निष्फल सेव
कहे कबीर वह क्यों मिले, निःकामी निज देव

***

विषय त्याग वैराग रत, समता हृदय बसाये
मित्र शत्रु एको नहीं, मन में राम सहाये

भक्ति का रस हर समय रहता है और वह कार्य को सुगम और सुखदायक बना देती है.

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात् पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ||

दुनिया जैसी है, वैसी है. दुनिया में कोई दोष भी नहीं है. दुनिया तो पूर्ण है. केवल तुम्हारी दृष्टि का दोष है. ईश्वर की दुनिया पूर्ण कारीगरी, पूरी शुभ भावना, और पूर्ण शुभ संकल्प का चित्र है. तुमने जैसी दृष्टि बनाई है वैसे विचार तुम्हारे मन में उत्पन्न होते हैं. और वैसे ही विचार के आधीन तुम बातचीत करते हो और बातचीत के सिलसिले में उसी प्रकार के कर्म तुम्हारे हाथ से होंगे. कर्म, मन, और वचन के संस्कारों का साथ लिए हुए तुम सुख और दुःख के दृश्य देखते हो और सुख दुख भोगते हो. इसमें ईश्वर का क्या अपराध है? काम करो तुम, अपराध ईश्वर के सिर थोपो. यह बात अच्छी नहीं है.

ईश्वर की रचना में जो हो रहा है मौज और इच्छा से हो रहा है.

हमारी शिकायत ईश्वर की रचना से नहीं अपने आप वाली रचना से है. ईश्वर की दुनिया ओर है, मनुष्य की दुनिया ओर है ओर ब्रह्मा की दुनिया ओर है. यह भिन्नता मनुष्य की दृष्टि से है ओर इनका कारण उसके वास्तविक भरम विचार हैं.

यह भरम में पड़ गया है ओर भ्रम के कारण उसे दुख सुख अपनी स्वार्थी दृष्टि के कारण प्रतीत होते हैं. इस स्वार्थ की जड़ अहंकार है. यदि मनुष्य इस का सुधार कर ले तो उसे दुख सुख का भरम जाता रहे.

एक ही रूप जिस समय भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाई देने लगता है तो खेंचातान उतपन्न हो जाती है ओर खेंचातान का परिणाम दुख होता है. इसी प्रकार चूँकि मनुष्य की दुनिया में अहंकार के कारण से अनेकता है वे खींचातान से खाली नहीं रहती. मनुष्य उसी का उपाय सोचने लगता है. इस प्रकार शिकायतों की भरमार हो जाती है जो उसी के अपने गलत भरम का परिणाम है.

इस अनेकता की खींचातान से छुटकारा पाने का ढंग गुरु की भक्ति है.

चारों ओर से जब चित्त को समेटकर एक गुरु के चरणों में लगाया जाता है तो अनेकता ही ओर से स्वयं दृष्टि हटने लगती है. उसे आप ही आप विश्वास होने लगता है कि यहाँ जो कुछ है उसमे यदि अपना अहंकार और अपना स्वार्थ ना लगाया जाये तो वह मौज और मसलहत के अनुसार है. इस प्रकार के विचार और विश्वास के अनुसार चलने को मौज का मार्ग और शरणागति का रास्ता कहा जाता है.

जिस जिस तरह अहंकार का रोग दूर होता जाता है उतनी ही बुद्धि शुद्ध होती जाती है और शिकायतें मिटने लगती हैं. जब वह बिलकुल ही अपनी दुनिया से दृष्टि हटा लेता है अर्थात स्वार्थ और अहंकार कम होने लगता है उसे ईश्वर की दुनिया का दृश्य उतना दुखदायी प्रतीत नहीं होता.

जो कुछ संसार में मनुष्य पर विपत्ति व आपत्ति आती है वह सब अहंकार के सुधार के लिए आती है. इसमें भी बहुत बड़ी मौज और मसलहत छुपी हुई है. जो उसे एक बार जान लेता है वह फिर भूलकर भी शिकायत नहीं करता बल्कि उसे विश्वास ही रहता है के यह दुःख भी छिपे रूप में कृपा के रूप में है.

इस विश्वास का अभ्यास और उसका पक्कापन उसे थोड़े ही समय में कुछ का कुछ बना देता है. जब तक अकड़ रहेगी विप्पतियों का आना आवश्यक है. अकड़ को छोड़ दो, विप्पत्ती मिट जाएगी. गुरु भक्ति से यह सुगमता से दूर हो जाता है.

गुरु भक्त की पकड़ दुनिया के किसी काम में नहीं होती क्योंकि दुनिया की किसी वास्तु में उसकी आसक्ति यां अपनापन नहीं होता. वह जानता है कि दुनिया में जो कुछ भी है वह मालिक ही का है. उसका अपना कुछ नहीं है.

मेरा मुझमे कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर
तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागे है मोर

यह दुनिया हमारी नहीं है किन्तु मालिक की है. वह जानता है कि उसकी भलाई किस बात में है. वह पूर्ण बोध और सर्वज्ञ है. वह हमारे आधीन नहीं है और ना उसका काम ही हमारी सहायता यां सुधार के आधीन है. उसने सोच समझ कर अपना काम किया है.

गुरू भक्ति

दत्तात्रेयः

जागते हैं तो गुरू हैं पास में
साँस में जज़्बे में और अहसास में
खाने पीने में गुरू का नाम ले
काम करने में गुरू का नाम ले
लिखना पढ़ना है गुरू के नाम में
दीन दुनिया सब गुरू के नाम में
क्या है अपना? कुछ नहीं गुरू का है सब
गुरू नतीजा हैं तो गुरू ही हैं सबब
जानो दिल व तन से गुरू पर हैं निसार
तेरी बेदारी का है सब कारोबार

सो गया जब ख़्वाब में आए गुरू –
ख़्वाब में भी है उन्हीं की आरज़ू
नींद गहरी आ गई है मेहवियत
है गुरू के ध्यान में मज्ज़ूबियत

तीन मंज़िल ये गुरू भक्ति की हैं
उनमें क्या है? तू नहीं है और न मैं
पहले सिमरन – ध्यान फिर पीछे भजन
रूह हैं गुरू दिल गुरू हैं गुरू हैं तन

भक्ति आसान से ज़्यादा आसान है। इसमें वक़्त का सामना नहीं करना पड़ता हाँ अहलियत ज़र्फियत और ख़याल का माद्दा क़ुबूलियत दरकार है तन मन-धन सब गुरू के अर्पण - फिर क्या है?

गुरू ही गुरू हैं। अनानियत गई मेरा तेरा अपना गया। बिगड़ा कुछ भी नहीं। सब बनता है बनता चला गया।

गुरू ने न कुछ लिया न दिया। न घर छीना न दौलत छीनी। बाल बच्चे, यगाना बेगाना, सब गुरू के नाम पर निसार हैं सिर्फ इसका ही समझ लेना ज़रूरी है। गुरू न जिस्म हैं न दिल हैं न रूह हैं। भक्त भी न जिस्म है। न दिल है न रूह है। फिर ये क्या हैं? कुछ हैं भी या नहीं? हाँ हैं। जिस्म, दिल और रूह तीनों सिफात में दाख़िल हैं। गुरू ज़ात है और भक्त भी ज़ात है।

पहले सिफात से काम लिया पीछे गुरू का नाम लिया। ज़ात तो हमेशा ही ज़ात है। जो सिफात के झमेले में पड़े रहते हैं। वह ज़ात को नहीं समझते और न समझ सकते हैं। उन्हें कोई कैसे समझाए।

दत्तात्रेय ने इस राज़ को समझ लिया। ये जगत उनकी दृष्टि में गुरू रूप हो गया.....

जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है
अगर ताब है तन का तू आब रू है
कहीं है लताफत कहीं है कसाफत
कहीं गुल की रंगत कहीं गुल की बू है
कसाफत लताफत से ऊँचा है पाया
इधर है उधर अपने हर चार सू है

वही अपने दाएँ वही अपने बाएँ
गुरू ही गुरू है गुरू ही गुरू है
यहाँ है वहाँ है अयाँ है निहाँ है
वही सब है फिर किसकी अब जुस्तुजू है

सोकर उठे। ऊपर नीचे दाएँ बाएँ, सर पर और पानों के तले पहाड़ ही पहाड़ नज़र आया। क़हक़हा मार कर हँसे ये पहाड़ गुरू बनकर मुझे ज़हन नशीन कराता है कि गुरू शख़्सी और ग़ैर शख़्सी दोनों हैं।

वही जुज़ में है और वही कुल में भी है
वही नख़्ल बोलने में और गुल में भी है
वही दिल की मस्ती वही तन की हस्ती
वही जामे दुनिया है और कुल में भी है

ज़ाते मुरशिद पास है तेरे मदाम
गो मिला करता है उससे सुबहो शाम
सैकड़ों कोसों की दूरी कुछ नहीं
बा ख़बर चेला गुरू के है क़रीन
उनमें अक्सर होती भी है गुफ्तुगू
हिस्से बातिन की हो चेले में जो ख़ू

इश्क़ उल्फत और मोहब्बत का है नाम
इसको भक्ति कहते हैं हर ख़ासो आम
असली भक्ति सिर्फ गुरू की भक्ति है
वह है ताक़त उसमें सद ही शक्ति है

<u>दत्तात्रेय -</u> ये बताओ कि
(1) भक्ति कितने प्रकार की है और
(2) भक्ति कैसे की जाए और
(3) किससे की जाए?

<u>चरवाहा-</u>
(1) भक्ति तीन प्रकार की होती है - स्थूल, सूक्ष्म और कारण
(2)
- स्थूल भक्ति – इंद्रियों की सेवा। फूल पत्ते आदि भेंट करना।
- सूक्ष्म भक्ति – दिल और ख़याल को भगवंत के रूप में लगाना।
- कारण भक्ति – भगवंत की कल्पना में लगे रहना है।

(3) भक्ति जब की जाए गुरू की की जाए। दूसरे की भक्ति इस क़द्र फायदेमंद साबित नहीं होती। इसी ख़याल से कहा गया है.

मूल मंत्रम गुरू वाक्यम

मूल पूजा गुरू पदम

ध्यान मूलम गुरू मूर्ति

मोक्ष मूलम गुरू कृपा

दत्तात्रेय ने चरवाहे से पूछा - भक्त की पहचान क्या है?

चरवाहे ने जवाब दिया - जो भजन यानी सेवा करे वह भक्त है. इंसानी बच्चा जब पैदा होता है वह अपनी सेवा करता है ख़ुदग़र्ज़ मालूम होता है। फिर जब वह गुरू के ज़ेरे तालीम आता है गुरू की ख़िदमत सोहबत और बरकत को अपनी तबई रुजहान का मरक़ज बनाता है उस समय वह भक्त कहलाने लगता है. वह गुरू की उलफत का दम भरता है। उसी का ख़याल और कल्पना करता है। इस ख़याल और कल्पना से इसका दिल अलीम (knowing) कलीम (talker) ख़बीर (knowledgable) समीअ (one who hears) बनकर वसीअ (विस्तृत; फैला हुआ) होने लगता है.

फिर इसी ख़याली मरकज़ (center) से ख़त दायरे, मुरब्बा मुस्ततील आदि शक्लें बनती हुईं निकलती हैं। वह उस गुरू को हर चीज़ में मुहीत और हर जगह हाज़िर नाज़िर पाने लगता है। हर हालत और कैफियत उस ज़ाते पाक की याद दहानी कराती हुई तमाम कायनात को गुरू की शक्ल की मुतशक्कल तस्वीर बनाकर दिखा देती है और वह सबमें अपने गुरू के अक्स और असल को मेहसूस करता हुआ उसी से मंसूब करने लगता है।

दोस्त दुश्मन एक जैसे जंचने लगते हैं और यह सबके भजन में लगता है। भजन की मुराद केवल सेवा है। और उत्कृष्ट भजन ख़लाइक़ की निस्वार्थ भाव से सेवा है। यही सच्ची साधना और असली इबादत है।

ख़िदमत ही ख़लाइक़ की समझ असली इबादत
यह सच्ची इताअत है यही सच्ची रियाज़त

कुछ दिनों यह हालत रहती है फिर गुरू का वही ख़याली और मरकज़ी नुक़्ता उसके दिल के अंदर क़ायम हो जाता है और वह सबको अपने में और अपने को सबमें देखने लग जाता है। पहले वह कहा करता था:

हर जगह उसका तजल्लीए नूर है
सबमें उसकी असलियत भरपूर है

और अब वह कहता है:

मैं हूँ उस दुनिया का मफहूमे (inference) मुराद (इच्छा)
मुझमें आलम (संसार) आप है आबादो शाद

ये सब विशेषताएँ भक्ति के प्रतीक में सम्मिलित हैं।

इंसान दुनिया में अपने ज्ञानात्मक अवोलकन और कार्यात्मक दोनों साथ साथ रहकर उसे कुछ का कुछ बनाते हुए सीधे रास्ते की तरफ रहबरी करते हुए मंज़िले मक़सूद की तरफ ले जाते हैं।

इल्म बे अमल नाकारा है.

वह हुज्जती दलील बाज़ मुतअस्सुब और तंग दिल बना देता है ये उसके ख़तरे हैं और अमल गो हर हालत में अच्छा है लेकिन अमल बे इल्म भी ख़राबी से ख़ाली नहीं होता। इससे अकड़ जकड़ और मज्ज़ूबियत के आ जाने का डर रहता है और मंज़िले मक़सूद तक पहुंच मुश्किल हो जाती है।
इल्म जब हो बा अमल हो और अमल जब हो बा इल्म हो.

करम और ज्ञान साथ साथ चलें तब वह लुत्फ दे जाते हैं वरना ख़ुश्क मिज़ाजी ख़ुश्क तबई और ख़ुश्क दिली आ जाती है।

दत्तात्रेय - भक्ति की नौइयत की भी कुछ सराहत कर दे।

चरवाहा – इस भक्ति की चार मंज़िलें हैं।

1. सालोक 2. सामीप 3. सहरूप 4. सायज
1. सोहबत 2. क़ुरबत 3. हम शक्लियत 4. मज्ज़ूबियत या मेहवियत

जब मुरीद गुरू की सोहबत में जाकर उसकी हमनशीनी करने लग जाता है और उसे हक़्क़ानियत के मज़ानीन से कुछ दिलचस्पी मिलने लग जाती है तो उसे सालोक (सोहबती) मंज़िल कहते हैं। सालोक की मुराद है (साथ) और लोक (जगह) ये हम मुक़ामी की मंज़िल है।

जिसको ख़्वाहिश हो मिले दीदारे हक़
जा के सोहबत में सुने इज़हारे हक़
दिल से सब शुबहात होंगे दूर आप
होगा रोशन उसमें हक़ का नूर आप

कुछ दिनों तक सोहबत का लुत्फ उठाया फिर गुरू का रंग ले लेकर तबीअत को रंगीन और रंगदार बनाने लगा अभी तक केवल हाशिया शीती थी अब गुरू के ख़याले दिल के अंदर सरायत करने लगे। दिली क़ुरबत नसीब होने लगी। ये सामीप भक्ति है (साथ) आप (पानी)

पास पानी के गया ठंडा हुआ
मिल गया दिल की तरावत का मज़ा
ताज़गी है चुस्ती है चालाकी है
तेज़ फेहमी आ गई। बेबाकी है

ऐ साधू! ये मंज़िल सामीप या हम क़ुरबती नाम रखती है दो मंज़िलें ख़त्म हुईं सोहबत और क़ुरबत की बरकतें नसीब हुईं। अब तीसरी मंज़िल की तरफ शौक़ का क़दम बढ़ा सोहबत और क़ुरबत ने ये असर दिखाया कि क़ल्ब की सफाई और हम ख़याली का रंग चढ़कर रोज़ बरोज़ गाढ़ा होता गया अब क्या है? वही ख़िदमात वही मेहसूसात वही तख़य्युलात। जो गुरू के थे उसमें दाख़िल हो गए। वह गुरू की शक्ल में मुतशक्किल हो गया।

जैसी उसकी वज़ाअ है उसकी है वज़ाअ
जैसा उसमें क़ताअ है उसमें है क़ताअ
ये है हमरंगी – ये हम शक्ली हुई
आईना महज़ नक़ली है ये असली हुई

इसे सारूप मंज़िल कहते हैं सा (साथ) रूप (शक्ल) तीन मंज़िलें ख़त्म कर लीं। अब चौथी की बारी आई। इसे साईज मंज़िल कहते हैं। सा (साथ) (यजय्या) (मिलाने वाली)। जो साथ में मिला दे। वह साईजा है। ये आख़री मंज़िल है। इसके आगे अब और कुछ नहीं है।

हो तलब – तब इश्क़ की जानिब चले
बे तलब बे वास्ता बे सूद है
जब तलब है इश्क़ का सौदा हुआ
असदियत के लुत्फ का शैदा हुआ
अहदिय्यत के लुत्फ का शैदा हुआ
अहिदय्यत में मानए तौहीद है
वाहिदिय्यत है ये और तजरीद है

मारेफत का फ़हम है तौहीद में
शिर्क छूटे आए तब तेहरीद में
मारेफत है जानना पहचाना
जानना पहचानना है मानना
मानने से दिल में इस्तग़ना हुई
इससे दिल में आ गई अब यक्सूई
आई इस्तग़ना हुआ उसमें फना

इस फना में मिल गया आबे बक़ा
वह है बाक़ी और सब फानी हुए
बहर के क़तरात कुल पानी हुए
ये नहीं है नीस्ती हस्ती है ये
हस्ती की हस्ती ही की मस्ती है ये

चरवाहा – क्या जानना चाहते हो?

दत्तात्रेय – कारण और अकारण भक्ति

चरवाहा – जिस नज़र से मैंने स्थूल, सूक्ष्म और कारण भक्ति के उसूल समझाए वह पूर्ण थे। वह कारण (तहती या रूहानी) भक्ति जिसके हिस्से में आ गई उसे आख़री मंज़िल तक रसाई हो गई अब ये आपका दूसरा सवाल है। इस मौक़े पर कारण भक्ति के मानी बदल गए। कारण यहाँ पर ग़र्ज़ और सबब की मुराद में बदल गया।

भक्ति कारण और अकारण दो प्रकार की होती है।

कारण भक्ति की तीन क़िस्में हैं :

- आरत (आजिज़ी लाचार)
- अर्थार्थी (एहले मक़सद)
- जिज्ञासु (मुहक़्क़िक़)

आर्त मुमकिन है मज़लूम मुतअस्सुब और मुसीबत ज़दा हो। ये ग़र्ज़ वाला होता है। सिवाए अपनी ख़ास ग़र्ज़ के और न कोई बात करता है न सुनता है। उसकी ग़र्ज़ है ये। जुल्म इताब और मुसीबत से निजात मिले वह अपनी ग़र्ज़ को मद्दे नज़र रखकर गुरू के पास पनाह गज़ीं होता है और गुरू भक्ति करता है।

अर्थार्थी की नज़र अपने मक़सद पर रहती है मक़सद में कामयाबी हो। और ये गुरू की भक्ति से मुमकिन है इस ऐतेक़ाद के ज़ेरे असर वह गुरू भक्ति करता है।

जिज्ञासु हक़ीक़त का मुतलाशी और मुहक़्क़िक़ है। ये दुनिया कैसे बनी? इसका बनाने वाला कौन? इसके बनाने की ग़र्ज़ क्या है? इसके बनने से जीवों को दुख क्यों हो रहा है? इन दुखों से छूटने की तदबीर क्या है? आदि आदि सवाल उसे सताया करते हैं। वह इन अक़दों के हल करने की नियत से गुरू की संगत और भक्ति को आवश्यक क़रार देकर गुरू भक्ति करता है।

ये तीनों कारण भक्ति हैं और सकाम कहलाती हैं। काम शब्द भी मक़सद का मुरादिफ है।

चौथी भक्ति ज्ञान भक्ति है.

वह अकारण (ग़ैर बेवजह) और निष्काम (बेग़र्ज़ाना) है। ज्ञानी बेग़र्ज़ होता है। वह एहले ग़र्ज़ की हैसियत में गुरू के पास नहीं आता। बल्कि यह समझता है कि गुरू कर लेना आवश्यक है। निगोरा (बेमुरशिदा) रहना अच्छा नहीं है।

कबीर निगोरा ना मिले पापी मिलें हज़ार
यक निगोरे की पीठ पर लख पापी का भार

ये पहले ही से बना बनाया है पूर्ण होता है। और उसकी गुरू भक्ति विशेष प्रकार की वक़अत रखती है। यह किसी किसी में होती है।

शरणागत और मौज पर निर्भर रहना

जो होने को है वही होता है और वही होगा. जिस नियामक ने पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, तारागणों को उत्पन्न किया है उसने उनकी विशेष चाल नियत की है. उसी चाल के अनुसार जड़ और चेतन सृष्टि के काम हुआ करते हैं. इसमें तनिक भी परिवर्तन नहीं होता. जो कुछ किया गया है सोच समझ के साथ किया गया है. हाँ अपनी अल्प बुद्धि के कारन उसे हम नहीं समझ सकते, लेकिन हमारे ना समझने से उनकी दशा में अंतर नहीं आता. इस बात का समझना कठिन है.

मनुष्य इतनी आपत्तियां उठाएगा कि उससे जान छुड़ाना कठिन होगा. कोई कहेगा कि यदि यह दशा है तो हमारा करना धरना सब व्यर्थ है. कोई बहस करेगा कि यदि प्रारब्ध का लिखा ठीक है तो फिर पुरुषार्थ क्या वस्तु है? लेकिन वास्तविक बात तो यों है कि जिसे पुरुषार्थ कहा जाता है वह भी प्रारब्ध के अंतर्गत ही है.

गुरु की निष्ठा को समझकर अपने आपको हर प्रकार से उसका सेवक बना देने से इस प्रकार के भाव मन में उतपन्न हो जाते हैं जो विश्वास को परिपक्वता के साथ मौज पर आरूढ़ रहने की योग्यता प्रदान करते हैं. इस मौज पर संतुष्ट और दृढ़ रहने से हानि नहीं होती और न मनुष्य आलसी बन जाता है. बल्कि उसमे धैर्य आ जाता है और निर्भयता और निर्द्वन्यता से आने वाली

परिस्थितियों को सहन करने के योग्य बना रहता है. उसके कारण से हृदय की व्याकुलता दूर रहती है जो स्वयं ही बहुत बड़ी कृपा की वस्तु है.

यह शरणागत होने और मौज या भगवत इच्छा पर निर्भर रहने की व्याख्या है.

निष्ठा

निष्ठा कहते हैं इष्ट पर दृढ़ता यां विश्वास के साथ स्थित होकर रहना. ध्यान की निष्ठा है. निष्ठा से विशेष प्रकार का दृष्टिकोण बन जाता है. यह दृष्टिकोण वैसे ही दृश्य सामने लाता रहता है जिसका हृदय में पक्का ध्यान और दृढ़ विश्वास है.

निष्ठा - संतोष, मौज और शरणागत का पंथ है. गुरु को गुरु की दृष्टि मन का अर्पण करना निष्ठा है. इसी निष्ठा का नाम एक की भक्ति है. एक की भक्ति में प्रारम्भ से एक की पूजा रहती है और अंत तक वह इसी एक आधार पर स्थित रहती है. एक का पुजारी दो, तीन, चार का पुजारी नहीं होता. एक को एक मान लेना एक की भक्ति है. एक को छोड़ के दूसरे से सम्बन्ध पैदा करना व्यभचार है.

जिसका पल्ला पकड़ा, उसका पकड़ा अर्थात जिसकी शरण एक बार ले ली, उसी में रहना चाहिए. दुसरे का पल्ला क्यों पकड़ा जाये. साधु का गुरु चोला छोड़ देता है. वह भी कमाई करता हुआ गुरु में लीन रहता है. गुरु देह को नहीं कहते. यह आदर्श और आइडियल है जिसका केवल एक विशेष व्यक्ति (ज़ात खास) के आसरे अनुसरण किया जाता है. मन तो एक है उसमे जिसका ध्यान बध गया, बध गया. अब एक के ध्यान को निकालकर दूसरे का ध्यान उसमे किस प्रकार भरा जा सकेगा? क्या दो के ध्यान से दुचितायी ना आएगी? और मनुष्य दुविधा का शिकार ना होगा?

संस्कार और प्रभावों को वह कहां ले जायेगा? यह तो हृदय में स्थान पा गए.

उच्च विचार वाला, गुरु में निष्ठा रखने वाला बार बार गुरु को नहीं बदलता. यह तो उनका काम है जिनमे गंभीरता नहीं होती और एक इष्ट पर स्थायी नहीं रहता. हाँ यदि गुरु झूठा, मक्कार, और आध्यात्मिक गुणों से रहित है तब तो उसके त्यागने ही में भलाई है क्योंकि गुरु होने के गुण ना होने के कारण से अभी सच्चे अर्थों में गुरु धारण भी नहीं किया गया. यदि किसी सच्चे को गुरु धारण कर लिया तो उसका त्याग करना क्या है? और ना हो सकता है. वह तो तमाम हृदय और मस्तिष्क में प्रवेश कर गया है - उसके ध्यान और प्रभाव को कहाँ कहाँ से हटाया जायेगा. क्या जीवन इसी काम के लिए दिया गया है. उलट फेर करने से क्या लाभ होगा.

झूठे गुरु के पक्ष को, तजत ना कीजे बार
द्वार ना पावे शब्द का, भटके बारम्बार
साँचे गुरु की पक्ष में, मन को दे ठहराए
चंचल से निस्चय भया, कहुँ नहीं आवे जाये.

गुरु एक होता है. मालिक एक होता है. एक चेला दो गुरु की भक्ति नहीं कर सकता और ना एक नौकर दो मालिकों की सेवा कर सकता है.

यहाँ जो भी है वह एक ही एक है. जिसका सम्बन्ध एक से है - वह आनंद में रहता है और जिसका सम्बन्ध दो से है उसकी दशा भिन्न रहती है .

इष्ट जब होगा एक ही होगा. दो इष्ट कभी नहीं होने चाहिए अन्यथा वह इष्ट नहीं कहलायेंगे.

तुम संतों के सत्संग का लाभ उठाओ. जहाँ कहीं अच्छी बातें मिलें उनको सीखो, जानकारी को बढ़ाओ. लेकिन यह सब काम एक गुरु के अधीन किये जाएँ, तब तो उनका लाभ होगा अन्यथा वह दुचितायी और बेचैनी उत्पन्न करेंगे और लाभ के बजाये हानि होगी.

सुख का चिंतन

१

दुःख आया जब देह में, मीठा लगा नाम
यह दुख गति अनमोल है, हिये पाया विश्राम

दुःख साबुन है देह का, मल दे छांट बहाये
मल तज निर्मलता मिले, जो गुरु होय सहाये

दुख आया और सुख गया, पाया दंड शरीर
कर्जा मेटा काल का, चित्त से बना गंभीर

सुख से भुला नाम को, दुख ने दिलाई याद
बुरा कहुँ क्यों दुःख को, दुःख में सुख का स्वाद

राधास्वामी की दया, मेटो मन की पीर
नाम जपूँ लव लीन हो, हिये रहे धीर गंभीर

२

सुख परमार्थ सार, सार लाख पावे कोई
लख पावे कोई एक, पुरुष जो होये सियाना
ताज अज्ञान विकार, विचार से गुरु का ज्ञाना

ज्ञान, ध्यान के संग, परम पद आसा लावे
आशा मन में लाये, सुन्न पद जाये समावे
सुन्न समाध लगाए, दशम दर पाट खुलाई
मन के सकल विकल्प त्याग, करे शब्द कमाई
शब्द में वृत्ति जोड़ रूप है उसका सोई
सुख परमार्थ सार, सार लाख पावे सोई

३.

सुख का चिंतन यूँ करो, जैसे लोभी दाम
जैसे लोभी दाम चित्त वहीँ में राखे
गढ़ा खजाना खाक में, नित्त धन धन भाखे
धन धन भाखे लालची, चिंता रहे धन की
धन दौलत की चाह है, यह गति है मन की
गति है मन की यही, रात दिन धन का ध्यानी
धन के लालच में फँसा, हरदम अज्ञानी
अज्ञानी को लालसा, धन से रखना काम
सुख का चिंतन यूँ करो, जैसे लोभी दाम

४

सुख का चिंतन यूँ करो, जैसे कामी काम
जैसे कामी काम, कामिनी को चित्त धारे
सोये जागे बैठे उठे, नहीं ताहि बिसारे

ताहि बिसारे नहीं, जागते सुमिरन उसका
सोते देखे स्वपन, रहे मन में वही खटका
खटका खटकत रहे, खटक नहीं हिय से जावे
त्यागे जग व्यव्हार और कुछ मन नहीं लावे
मन नहीं लावे आपने, कामिन उसका राम
सुख का चिंतन यूँ करो जैसे कामी काम

५

सुख का चिंतन यूँ करो, जैसे मन संकल्प
जैसे मन संकल्प रूप औरन का धारे
हो जाये वही रूप व अपना रूप बिसारे
अपना त्यागे रूप और का रूप बनावे
भृंगी कीट समान कीट भृंगी हो जावे
भृंगी कीट बना त्याग पृथ्वी को उड़ता
अपना नाता तोड़ उसी की और वह मुड़ता
मुड़ता सब संकल्प ले तजा विकार विकल्प
सुख का चिंतन यूँ करो, जैसे मन संकल्प

६

सुख का चिंतन यूँ करो, जैसे पानी मीन
जैसे पानी मीन, तज नीर ना जावे
कबहूँ होए बिछोह, जीव और प्राण गंवावे

प्राण गंवावे अपना पानी सों यूँ प्रीत
यही सार है भक्ति का, यही प्रेम की रीति
यही प्रेम की रीत है, महा कठिन व्यौहार
ऐसे ही सुख परमातम का मन में रहे प्यार
रहे प्यार विचार तज दीन अधीन प्रवीन
सुख का चिंतन यूँ करो, जैसे पानी मीन

७

सुख का चिंतन यूँ करो, ज्यों विरती व्यौहार
ज्यों विरती व्यौहार, धार जो मन से निकसी
जाये मिले जिस वस्तु से वा से नहीं बिछड़ी
वा से बिछड़ी नहीं, उसी का रूप कहाये
उसी की होकर रहे, उसी से नेह लगाए
नेह लगावे ब्रह्म से विरती ब्रह्माकार
ब्रह्मानंद का भान हो सत संकल्प विचार
सत संकल्प विचार से गन गह ताजे विकार
सुख का साधन यूँ करो ज्यों वृती व्यौहार

८

सुख का चिंतन यूँ करो जैसे वृत्ति विवेक
जैसे वृत्ति विवेक सार गहे तजे असारा
बूँद लहर को छोड़ लहे सत सिंध अपारा

सिंध अपार महान वह सबका है आधार
निराधार रहे आप में सबका उस पर भार
सबका उस पर भार है भार को भार ना जान
भार अभार का द्वन्द लख रह निर्द्वन्द महान
रहे निर्द्वन्द समान जब, व्यापे नहीं अनेक
सुख का चिंतन यूँ करो जैसे वृत्ति विवेक

९

सुख की जड़ निज रूप में, बिरला जाने कोय
विरला जाने कोय, जिसे गुरु संग मिला है
उसका मन निज रूप के बीच में जाये पिला है
जाये पिला है मन तब निज रूप लखे वह
लख लख कर निज रूप साँच सत बान भखे वह
बात भखे वह जान समझ औरन समझावे
आप तरे भव सिंध, और दूजे को तरावे
दूजा दिया तराये कर, सो परमार्थी होय
सुख की जड़ निज रूप में बिरला जाने कोय

सुख कैसे मिलता है?

चित्त की वृत्ति का किसी वास्तु में आरूढ़ होकर उसके साथ संयम कर लेने से प्राणी को सुख प्राप्त होता है. संयम करना वृत्ति का ठहरना कहलाता है. और जमी हुई वृत्ति का टिकाव, जमाव यां संयम के स्थान से हटाए जाने पर दुःख होता है. राधास्वामी मत अथवा संत मत में दुख और सुख की परिभाषा और व्याख्या बस इतनी ही है. उससे अधिक कहना विषय को बढ़ाना है.

स्त्री में, खेल कूद में व तमाशे में, गाने बजाने, साधन व अभ्यास में, परमार्थ और स्वार्थ में, जहाँ जहाँ और जब जब वृत्ति ठहरेगी, वहां वहां उस उस समय सुख होगा.

स्त्री में, खेल कूद में व तमाशे में, गाने बजाने, साधन व अभ्यास में, परमार्थ और स्वार्थ में, जहाँ जहाँ और जब जब वृत्ति का हटाव होगा, वहां वहां उस उस समय दुःख होगा.

इस वृत्ति में हमारे अंदर की छाया रहती है जो धार के रूप में हमारे शरीर के रग रग और रेशा रेशा में चालू रहती है. उसी से शारीरिक व्यवस्था चलती रहती है और दूर और निकट और बाहर और भीतर उसी की धार किसी ना किसी केंद्र पर ठहर जाती है और उस ठहराव में सुख होता है. जहाँ उस केंद्र से वृत्ति अथवा सूरत की धार हटी, उसी समय दुःख होने लगता है.

आदमी बाग का तमाशा देख रहा है और खुले हुए फूलों से उसे आनंद मिल रहा है क्योंकि उसकी सुरत की धार अथवा वृत्ति वहाँ ठहरी हुई है. उस आनंद की अवस्था का हम पता लगाने लगते हैं. यदि यह संसार ना होता तो किसी प्रकार इस संसार के कारण का पता ना लगता. सारा ज्ञान प्रायः नष्ट रहता. चूँकि यह दुनिया है और हममें उसके जानने की शक्ति है, इस कारण से हम उसे समझते हैं. जिनमे जानने की शक्ति नहीं है, वह उसे जानते तक नहीं.

हम इस संसार के व्यवहार में सतपना, चित्तपना, और आनंदपना देखते हैं. परन्तु यह विभिन्न श्रेणी के दिखाई देते हैं. इन सब पर दृष्टि डालकर हम अपने विचारों की जड़ स्थापित करते हैं और हमने कुछ ऊपर स्थानों के बारे में कहा है, उसका मूल इन्ही अनुभवों पर है. हमने पिंड में षठ चक्रों को देखा. उन पर विचार किया. यह स्थूल हैं. इनको देखकर उनके सूक्ष्म रूप का ध्यान आया. अपने भीतर खोज की गयी. मस्तिष्क की और चढ़ाई की, उन पैर जीत मिली. जब सूक्षम रूप समझ में आ गया और हमारी बुद्धि भी सूक्षम रूप के संयोग से सूक्ष्म हो गयी, तब इस पर भी हमें जीत प्राप्त हुई. अब उसके कारण का विचार आया और इसी अभ्यास से कारण का भी पता लगा. स्थूल तो सूक्ष्म की छाया है. और सूक्ष्म कारण की छाया है अर्थात कारण ही सत् है और सूक्ष्म और स्थूल इसकी छाया होने के कारण से मिथ्या हैं. लेकिन

वर्तमान व्योवहार में उनको न मानना और उनका मिथ्या मिथ्या कहते रहना यदि भूल और ना समझी नहीं तो फिर क्या है?

परिणामों को देखकर कारण तक पहुंचना साधारण सी बात है. और जिस पर यह कारण और परिणाम निर्भर हैं वह पूर्ण पुरुष या स्वस्वरूप है जो ना सगुण है न निर्गुण है, न साकार है न निराकार है. वह क्या है? कुछ कहा नहीं जाता यहाँ आकर यह जुबान गूंगी हो जाती है. वह जो है वह है. इससे अधिक कहने का साहस नहीं है.

सूरत शब्द योग के अभ्यास का असली प्रयोजन तो निज स्वरुप या सत् तक पहुँचना है और वह निज स्वरूप न हमसे पृथक और न भिन्न है.
भ्रम के परदे बुद्धि पर पड़े हुए हैं जिससे उनका अनुभव नहीं होता. अभ्यास से यह पर्दे फट जाते हैं. तब आप ही आप अनुभव हो जाता है और यही निर्वाण, मुक्ति और धुर पद है. लेकिन इन पर्दों के हटते समय अभ्यासियों को जो लाभ अनुभव होते हैं, वह अनगिनत प्रकार के हैं.

१. पहला लाभ तो यह है कि - शरीर, मन, और आत्मा में समता हो जाती है. शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है. इन्हीं सब बातों का एक नाम सत् है. सत् अस्तित्व, जीवन और प्राकट्य को कहते हैं.

२. दूसरा लाभ यह है के जब जब मन जिस स्थान पर ठहरता है उस समय उसे सुख और लीनता प्राप्त होती है. लगातार अभ्यास करते रहने से इनका लाभ इतना गहरा और स्थायी होता है कि अभ्यास के बाद भी ये बराबर या अधिक देर तक स्थिर रहता है और जीवन प्रस्सनता और आराम से गुजरता है. इसका नाम आनंद है.

३. तीसरा लाभ यह है कि अभ्यास से पर्दों के फट जाने के कारण ज्ञान और अनुभव में वृद्धि होती है और वह बराबर बढ़ता ही जाता है. उसमे कमी नहीं आती. इसका नाम चित्त शक्ति है.

तात्पर्य यह कि मनुष्य को सत्, चित्त, आनंद अर्थात सच्चिदानंद की अवस्था का अनुभव दृढ़ हो जाता है और वह संसार के झगडे बखेड़ों में रहता हुआ उन पर अपने आपको विजयी पाता है. जैसे कमल का पौधा पानी के अंदर रहकर न पानी से तर होता है और न नीचे है और न आकर्षित होता है किन्तु जल के बढ़ने से बराबर बढ़ता चला जाता है. उसी तरह एक सच्चा अभ्यासी संसार के हज़ार झमेलों में पड़ जाये मगर उनके ऊपर हो रहेगा. यह झमेले उस पर विजय प्राप्त न कर सकेंगे. क्या यह लाभ कम है?

शारीरिक आकृति और रूप में परिवर्तन, संकल्प में दृढ़ता, वाणी का सुरीला होना, जीवन का तेजस्वी होना, परमार्थ के साथ स्वार्थ में सफलता, संसार की प्राप्ति के साथ त्याग अदि अनेक प्रकार की अवस्थाएं प्राप्त होती हैं जिनका कोई वर्णन नहीं कर सकता.

जिस आदमी को शरीर या हृदय का रोगी देखो तो यह समझ लो उस अभ्यासी ने अभी तक समता के नियम का रहस्य नहीं पाया. जिसका हृदय शुद्ध पवित्र होता है, उसका शरीर भी वैसा हुआ करता है. शरीर मानसिक धार का जमा हुआ और स्थूल रूप है. विशाल हृदय वालों का रोगी होना आश्चर्य है और जहाँ कहीं रोग दिखाई दे तो समझ लेना चाहिए कि अभ्यासी न तो विधिपूर्वक अभ्यास करता है न उसके मन शुद्धता आई है.

इनके अतिरिक्त दुनिया जिन्हें सिद्धि शक्ति यां महात्माओं की करामात समझती है वह मन की एकाग्रता के परिणाम हैं. किन्तु राधास्वामी मत में अभ्यासिओं को पहले ही बता दिया जाता है कि अभ्यास का यह प्रयोजन नहीं है. इनसे दूर की रहने से भलाई है, वरना जो कोई इनमे फंसता है वह मारा जाता है और माया का जंजाल उसे फंसा लेता है. योगी हमेशा उसके शिकार हुए हैं. यह सिद्धि शक्ति माया का ही रूप हैं और यह केवल चित्त की वृत्ति के एकाग्र होने और उस वृत्ति का किसी भौतिक या मानसिक वस्तु पे संयम करने पर स्वयं आ जाती हैं.

उद्देश्य तो निज स्वरुप या सत का साक्षात्कार करना है.

मंगलम अशब्द अरूप, शब्द स्वरुप स्वामी
मंगलम अलख अनाम, अगम नाम नामी
मंगलम दीन बंधु, दीना नाथ दाता
मंगलम अभेद भेद, आनंद धन त्राता
महिमा अनंत आदि, अंत कौन गावे
भेद तेरा कौन जाने, कौन कह सुनाये
संत भेस प्रगट जगत, जीव को चिताया
काल कर्म फंद काट, धुर ले पहुँचाया
प्रथम तत्व निज स्वरुप, पड़ कमल नमामी
गाऊं, ध्याऊँ, रात दिवस, भजूं राधास्वामी

***

मन के नाच सारे नाचें, ऋषि मुनि नर देवा
ऊँची नीची चाल चलें, द्वन्द जग की अग्नि जलें
दुविधा की गोद पलें पावे नहीं मेवा
मन के नाच सारे नाचें, ऋषि मुनि नर देवा
दुचिता पड़ विपत सहें, भली बुरी बात कहें
सम चित्त कर नाहीं रहें, करें काल सेवा
मन के नाच सारे नाचें, ऋषि मुनि नर देवा
मन से बचे भक्त दास, सुख दुख की त्याग आस
राधास्वामी संग निवास, गुरु के नाम लेवा
मन के नाच सारे नाचें, ऋषि मुनि नर देवा

आस आस जीव बंधे, आस जम की फांसी
आस ले निरास बने, चित से उदास बने
दुविधा सांस सांस बने, जग कराई हांसी.
आस आस जीव बंधे, आस जम की फांसी

कोई चाहे धन का दान, कोई मांगे मन का मान
कोई ज्ञान कोई ध्यान, अपना रूप नासी
आस आस जीव बंधे, आस जम की फांसी

बंधन फँस मुक्ति माँगे, जोग जतन जुक्ति माँगें
भक्ति सिद्धि शक्ति माँगें, परम तत्व वासी
आस आस जीव बंधे, आस जम की फांसी

कोई भजे त्रिपुरार, कोई कृष्ण से प्यार
कोई बुद्धि का विहार, बेस पुरी काशी
आस आस जीव बंधे, आस जम की फांसी

लखे नहीं अपना रूप, पड़े भव के द्वन्द कूप
सो नहीं प्रजा न भूप, माया विश्वासी
आस आस जीव बंधे, आस जम की फांसी

खोल कहूँ माने नहीं, झगड़ा करें गह के बांह
नहीं ले गुरु पद की छाँह, मीन जल में प्यासी
आस आस जीव बंधे, आस जम की फांसी

राधास्वामी निज स्वरुप, अध्भुत अचरज अनूप
गोता मार तन के कूप, होजा सुखरासी
आस आस जीव बंधे, आस जम की फांसी

***

अपनी ओर निहारिये, औरन से क्या काम

औरन से क्या काम, काम अब अपना कीजे
समय अमोलक मिला, चित्त कहीं और न दीजे

चित्त न दीजे ओर ठौर, नर जनम सुफल हो
अपना करो उपकार, हृदय तब शुद्ध विमल हो

शुद्ध विमल हो हृदय, सोध ले अपनी काया
काया मध्ये रहे, ब्रह्मा जग, संसत्रित माया

संसत्रित माया कल्पना, कल्पित क्रोध और काम
अपनी ओर निहारिये, औरन से क्या काम

स्रोत

- राधास्वामी योग भाग १-६
- कबीर योग भाग १-३
- दयाल संहिता (दत्तात्रेय के मुखारबिंद)
- शिव शब्द सागर भाग १-२